अध्याय - सप्तम

-- अवज्ञा --

हरिगीतिका

जिसने स्ववीर्य विराट मद, मर्दित अधिप[1] बहुष: किये ।
हृतदर्प वैश्रवणादि[2] भी, परिभव व्यथा लेकर जिए ॥
कृतवीर्यसुत जिसके विजय, अभियान घोर अजस्त्र[3] थे ।
बलसिंधु खण्डित कर दिए, भुजदण्ड एक सहस्त्र थे ॥

माहिष्मती[4] रेवास्थ[5] घेरी, की विजित फिर सर्वथा ।
प्रेषित किया यम सद्म हैहय[6], हरी भूतल की व्यथा ॥
वे रोष ज्वाला रूप भृगुमणि[7], अब तपस्या निरत हैं ।
अब भी नहीं पर वे बलोध्दत, पापरोधन विरत हैं ॥2॥

तप तेज भास्वर[8] प्रभाकर सम, लोक हित चिन्तक सदा ।
पीड़ित जनार्ति[9] निवारणोचित, शक्ति है रिपुभयप्रदा ॥
होते अभी भी उद्यतायुध[10], देख अघ आचार को ।
दुस्सह सदा रहती अवज्ञा, परषु की षित धार को ॥3॥

हो विप्र भी तर्पण किया, संग्रामजित रिपुरक्त से ।
थे पालते जिनके वचन, सारे नृपति अनुरक्त से ॥
रक्ताक्त धोया था परषु, सरि नाम ही लोहित[11] हुआ ।
जीती अखिल वसुधा नहीं, पर मन विभव मोहित हुआ ॥4॥

गीतिका

गोहरण[12] उत्तर दिया कर, गोहरण[13] नृप कुजन का ।
शमित सब विद्रोह स्वर ज्यों, गोहरण[14] रिपु वदन का ॥
रहे गोस्वामी[15] स्वयं पर, चक्रवर्ती ऋषि किये ।
कष्यपार्पित कर निखिल भू, सवसु[16] द्विजगण थे किए ॥5॥

हर लिया बहुभार भू का, बढ़ाया यम सदन का ।
शैवबाधा रोष कर्तित, रदन भी गजवदन का ॥
छीन ली क्षिति नव्य भृगु ने, कर पराजित अब्धि को ।
कौन इस महनीयता को,पास का उपलब्धि को ॥6॥

1. राजा	2. रावण आदि	3. लगातार
4. नर्मदा तट पर स्थित हैहय राजधानी	5. नर्मदा तट पर स्थित	6. हैयवंशी कार्तवीर्य अर्जुन
	7. परशुराम	8. तेजोमय
9. लोगों की व्यथा	10. अस्त्र उठाए हुए	11. लोहित नदी जो अरूणाचल में है
13. पृथ्वी का हरण	14. वाणी का हरण	15. इंद्रियों के स्वामी आत्मजेयी
16. धनवैभव युक्त	12. ऋषि जमदग्नि की गाय का हरण सहस्त्राजुर्न द्वारा	

दोहा

छेद्य[1] जिन्हें है धर्म हित, जननी का भी शीश ।
शिष्यजातनयहानि को, सह सकते न मुनीष ॥7॥

सवैया
बल का सुप्रयोग किया न गया,
यह बात बड़ी मुझको खलती है ।
जब पीड़क हो बलवान बना,
मम रोष शिखा फिर से जलती है ॥
चिरकाल किया तप, शांति मिली,
हिम मानस की झट से गलती है ।
यह सह्य नहीं फिर लोक कहे,
अब न्याय नहीं बल की चलती है ॥8॥

परिणाम विचार लिया तुमने,
जब शक्ति प्रयोग किया अबला पर ।
कुरू वंष प्रभाव घटा जग में,
अति निंदित कृत्य किया पुर जाकर ॥
तुम कारण हो इसके दुख के,
अब पाप हरो इसको अपना कर ।
जग में यश लब्धि तुम्हें नित हो,
गज का पुर हो फिर से कमलाकर[2] ॥9॥

चरणार्पित में निज प्राण करूं,
यदि दे अनुदेश गुरो क्षण में ।
मुझको वरदान यही वस दें,
अतिमात्र रहे दृढ़ता प्रण में ॥
जिसके वचनादि प्रतीति[3] विहीन,
अभेद कहां उसमें तृण में ।
जिसका न चरित्र कहां नर है,
अभिभूति[4] उसे मिलती रण में ॥10॥

1. काटने योग्य	2. लक्ष्मी का कोष
3. विश्वास	4. पराजय

मुझको सब ज्ञात करी तुमने,
जन कार्थ सुतोचित घोर प्रतिज्ञा ।
परिणेय[1] नहीं फिर भी तुमको,
श्रुतिपार दृषा[2] गुरूदत्त अनुज्ञा ॥
बहु षास्त्र पढ़े फिर भी न जगी,
मति में श्रुति सम्मत धर्म अभिज्ञा[3] ।
परितापित मानस शापित से,
मत भीष्म बनो कर राम अवज्ञा ॥11॥

जिसका बस लक्ष्य बना प्रणपालन,
है पर तंत्र बना वह प्राणी ।
अपराध पुनष्च महान किया,
न सुनी मद में गुरू की शुभ वाणी ॥
जिन से सब षास्त्र ग्रहीत किये,
उनके पुरत: षठ वेद प्रमाणी ।
हठ धार किया गुरू से अतिवाद[4],
बनी यह जीभ निषात[5] कृपाणी ॥12॥

कौतुक ही लगती यह बात,
हुई जग में प्रथमा अवहेला ।
आयुध थे अप्रयुक्त समागत,
शक्ति समाश्रय की नवबेला ॥
सैन्य समेत हने पुर जाकर,
मृत्यु बना भृगु पुत्र अकेला ।
तूल[6] समान उड़े बल दृप्त,
प्रभंजन भार्गवजात न झेला ॥13॥

1. विवाह योग्य
2. वेदों में पारंगत
3. पहचान
4. वाद विवाद दुराग्रह
5. तीक्ष्ण धार वाली
6. रूई

अल्प चलूं गुरू के प्रतिकूल,
नहीं यह बात कभी मन आयी ।
क्षत्रिय हूं रण से न फिरूं,
यह बात गयी मुझको समझायी ॥
जान रहा गुरू से कर द्वन्द्व,
किसे मिलती जग बीच बड़ाई ।
आज हुआ पर सिद्ध पुनः,
वनिता[1] बनती अति भीषण खाई ॥14॥

एक मदान्ध महीप विनाशक,
त्रास विमुक्त करी क्षिति सारी ।
अन्य महारथ नीति विशारद,
वीर व्रती शित[2] आयुध धारी ॥
अर्क समान प्रताप विभूषित,
दिव्य अमोघ कुठार प्रहारी ।
आज बना प्रिय शिष्य स्वयं,
उनके अतिरोषण का अधिकारी ॥15॥

दोहा
विजितेन्द्रिय दृढ़ व्रत सदा, जनक खेद असहिष्णु ।
ब्रह्मचर्य आदर्षवत, लोभादिक रिपु जिष्णु[3] ॥16॥

शत्रुभयद[4] हरिप्रिय परम, धनुर्वेद निष्णात[5] ।
सुवलराज[6] दुख हेतु नित, त्यक्तभूमि विख्यात ॥17॥

प्रतियोधी बनकर खड़े, द्विजगुरू क्षत्रिय शिष्यश् ।
निर्णय लम्बित विजय पर, है काशिजा भविष्य ॥18॥

1. स्त्री	5. पारंगत
2. पैना, तीक्ष्ण	6. गांधार नरेष का पीड़क
3. जीतने वाला या बलवान राजा का पीड़क	7. अम्बा
4. शत्रु को भय देने वाला	

सवैया

युद्ध हुआ अति भीषण वेग,
चले बहु सायक प्राण विघाती ।
घात प्रघात चले अति नूतन,
शक्ति नहीं पर की क्षय पाती ॥
देहज शक्ति कभी निज रूप,
कभी तप शक्ति प्रभाव दिखाती।
स्यंदन[1] हीन तनुत्र[2] विदीर्ण,
हुए कुरू थे गुरू छिद्रित छाती ॥19॥

कौन अजेय अमेय महाप्रभु को,
रण मध्य हरा सकता है ।
कौन व्रती कुरूसत्तमके बल,
विक्रम को झुठला सकता है ॥
काल प्रवाह समान अवार्य[3] न,
बाण प्रवाह वहां रूकता है ।
शैल समान अड़े रण भीष्म,
न तापस भी नभ सा झुकता है ॥20॥

दोहा

जिन भृगुपति ने निमिष में, किया क्रोंच नग विद्ध।
सुरसरितासुतवक्ष[4] पर, उनके वाण असिद्ध ॥21॥

सवैया

युद्ध चला अति उग्र निरंतर,
सप्त त्रयी[5] दिन की तब बीती ।
भीष्म थके न रूके भृगु श्रेष्ठ,
न आयुध की निधि थी कुछ रीती ॥
मोघ लगा बल विक्रम कौरव,
सोच रहे युव शक्ति न जीती ।
आयुध नव्य बचा बस एक,
प्रस्वापन में अब भीष्म प्रतीती[6] ॥22॥

1. रथ	4. भीष्म
2. कवच	5. इक्कीस
3. जो निवारण योग्य न हो	6. विश्वासी श्रृद्धावान

किन्तु उठा नभ से यह घोष,
अरे गुरू के तुम हो अपमानी ।
सीख लिए विविधास्त्र सयत्न,
उन्हीं द्विज से करते मनमानी ॥
शब्द हुए स्वप्रणीत तुम्हें प्रिय,
वेद प्रमाणक बात न मानी ।
वाधित है हठ से तव ज्ञान,
प्रतिश्रुति[1] की महिमा अनजानी ॥23॥

दोहा
अनिर्णीत यह रण रहा पुत्र, न पाया जीत ।
तुमको करना असंभव, निज निर्णय विपरीत ॥24॥

देख अभ्युदय शिष्य का, गुरू पाते आनन्द ।
तप बल विद्या व्रत सदा, तेरे रहें अमन्द ॥25॥

किन्तु अवज्ञा फल तुम्हें, चखना होगा तात ।
हो अजेय भी सहोगे, अवहेला आघात ॥26॥

सोरठा
टूटी आशा डोर तनुता[2] धारी कान्ति ने ।
देखा मेरी ओर अम्बा ने अति घृणा से ॥27॥

कुण्डलिया
गुरू से कृतरण मैं चला, हो निंदित आचार ।
अपराजित था समर में, गया स्वजीवन हार ॥
गया स्वजीवन हार, भार अघ का मैं ढोता ।
कर कुकृत्य श्रृंखला, हृदय मेरा था रोता ॥
क्या अनीति भृत्यता, शौर्य की बनी नियति है ।
क्या सुरसरितापुत्र, यही तब जीवन गति है ॥28॥

कुण्डल छंद
उठी अम्बा रखा शिर ऋषि चरण पर ।
नहीं आश्चर्य है इस तुमुल[3] रण पर ॥
किया मेरे लिए प्रभु अमित विक्रम ।
नहीं पर नियति के अवगम्य[4] विभ्रम ॥29॥

1.प्रतिज्ञा	3. भीषण, उत्तेजित, कोलाहलमय, रणसंकुल
2. न्यूनता	4. समझ में आने योग्य

नहीं वह चाहती सरसा[1] लता हो ।
जिए उर में सदा षर सालता हो ॥
नहीं पर हार अम्बा मानती है ।
बनाना स्वयं पथ वह जानती है ॥30॥

सभी कुछ लभ्य है तप से जगत में ।
आपने ही कहा ऋषिवर विगत में ॥
उसी में निरत होगी राज कन्या ।
विरत है दुष्ट भव से यह अधन्या ॥31॥

नहीं पर काम्य है हरि बोध लेना ।
बना बस लक्ष्य है प्रतिशोध लेना ॥
अमोघा शक्ति का संचय करूंगी ।
दर्प पुरूषार्थ का क्षण में हरूंगी ॥32॥

कर रही आज से मुनि वृत्ति धारण ।
न होगा कोप से मेरे निवारण ॥
कभी होगा सकलग्रासी महारण ।
बनूंगी मात्र में कुरू[2] मृत्यु कारण ॥33॥

कहा ऋषि ने न शुभ संकल्प तेरा ।
हिंसना ने तुझे सब ओर घेरा ॥
नरक हित कौन करता है तपस्या ।
करो वत्से ! कुमति को आत्मवष्या[3] ॥34॥

कभी मारण नहीं तप लक्ष्य होता ।
कहीं क्या आत्महित भी भक्ष्य होता ॥
हुआ अन्याय तुम पर मानता हूं ।
किन्तु यह तथ्य भी में जानता हूं ॥35॥

1. रसपूर्ण, स्वस्थ, हरी 2. भीष्म
3. अपने वश में लाने योग्य

न हिंसा से कभी भी शांति मिलती ।
न आत्मा को परम विश्रांति मिलती ॥
नहीं सुख स्वप्न में भी व्यग्र नर को ।
करो प्रस्थान तुम हे देवि घर को ॥36॥

द्वेष का कीट खाता मन सुमन को ।
दिव्यता हीन कर देता सुजन को ॥
तिमिर क्या रक्ष्यं है इसको हटाओ ।
पुरी जाकर जननि के दुख मिटाओ ॥37॥

1. रक्षा करने योग्य

ꕥ